चेतना का विराट रूप

हमारे सम्बन्ध जीवन-चक्र का केन्द्र आत्मा है। यही सृष्टि का स्रोत और शासक है।

इसी स्रावक की आत्मा से शरीर और इन्द्रियों द्वारा वास्ती की तरह काम करते हैं। जन्म भी, उसी आत्मा और इन्द्रियों को तदनुसार विकसित करता है। जब नम और जन्म आत्मा के निर्माण के लिए पुष्टि का भी नष्ट हो जाता है, तब पुष्टि आत्मा तदनुसार विकसित नहीं होता है। जब नम होता है, तब नम आत्मा तदनुसार विकसित होता है। जब नम आत्मा होता है, तब नम आत्मा तदनुसार विकसित होता है।

शरीर और इन्द्रियों का द्वारा चक्षुयों का ध्यान ग्रहण करता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है।

शरीर और इन्द्रियों के द्वारा अभिप्रेत तत्त्व होता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है।

जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है।

जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है। जब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है, तब आत्मा स्वरूप अभिप्रेत तत्त्व होता है।

चेतना का विराट रूप

१७
प्रातम भूमिति "मुन्द है।"

भरतरीष-शरण का एक शायदत्र बिकार चला घर या रहा है— "मुन्दः भृगु, मुन्द, मुन्द, निर्मल और निर्विकार है। वहीं ईश्वर या प्रभातम है। उसे कहा भी निकली, पापी या दोषों से लिप्त नहीं कहा गया है।" प्रथा होता है— "अब आत्मा एकदम निमित्त स्वरूप है, तो तिनका साधन, लोग, लोग, श्रावनक आदि दुरुपयोगों के कौशल कहाँ से आ गए?

यद्यवस्थापित परिणामहीन हैं। शुद्ध आत्म-स्वरूप की वृत्ति से आत्मा इससे दूर है।

अन्तगत के महानुत्त आचार्य ने मस्तक के ब्रज्य-संग्रह में कहा है—

"सम्भव-गुणवत्ताशी ह, चकुड़लाहि तहहूँ ह्यालल श्रृद्धलुऽऽ।"

बिश्वेश संसारी, सबसे जुला हुसुऽऽ।"

जब-बब जीर्णों के भेरों की बिंदी करता हैं, अकेले अकेले अत्यधिक साधन तथा मन चाहे और विज्ञान मन बाले—इन बेदों की और जब ज्ञान है, तो तीर्थस्थ में भी ज्ञान है। जहाँ पर उपेक्, वह कौं भी देवी हो, वहीं की रिपत्ति में भी आशुत्त्व है। ज्ञान ज्ञाति होते हैं। गुणस्त्रांगों की दुःिति यहाँ भी चलती है और एक से चौजह गुणस्त्रांग में प्रति मत में पूर्व तक की रिपत्ति प्राप्त ही है। जहाँ तक सबी संसारी जीव हैं। और, जो संसारी हैं, वे सब बाल हैं। और, बाल का है—क्रम का आवाम है। साथ सम्यक है। जब तक कभी आत्मा हैं। साथ चिने क्षुद्र है, तब तक आत्मा पूर्ण पूल नहीं है। पूर्ण शुद्ध नहीं। और, इस दृष्टि से भी यह यथार्थ स्वरूप होता है कि व्यास श्रावनक नहीं, तो गुणस्त्रांग कहीं दिखें। गुणस्त्रांगों का श्रावनक आत्मा की क्रिया विस्मय के आधार पर ही किया गया है। विवे चौजह गुणस्त्रांग को छोड़ने पर पूर्ण शुद्ध हो गई, तो फिर गुणस्त्रांग की चौजह सीमा नहीं रही। प्रति—चौजह गुणस्त्रांग बालों को भी नुक्त होना था। इस तरह श्रावनक से, आप संसार के प्रवृक्तियों, भाव-भिमांतों, भाव-मन के उत्तत-कुद के आधार पर देखें, तो कहीं दर्शन मागह, कहीं चार्ट्र मागह, कहीं ज्ञातवर्ण, कहीं व्यासवर्ण भार्षित का बनें। देखें की जो मिलेगा और उसमें भी परे ज्ञातवर्ण सबरे बोधिमत में भी बल्भीय, नाग, गुज और आशु कर का।

इसी उपर्युक्त विशिष्ट की शाक्ति हम शुद्ध-नये की वृद्धि से देखने का स्पष्ट करें। तो राम न्यायों, नित्यों से परे हमें शुद्ध-निमित्त आत्मा देख देंगे। अभिन्न निर्माण से लेकर धर्मरूप आदि साधन चेतना-अभ्यास में शुद्ध बाल-स्वरूप को बना ज्ञाति विस्मय है। पापी, सत्याधीरी और प्रभामणियों तथा नरक की अवधि में जलने वाले नैतिकों में भी आत्मा का शुद्ध रूप परिलक्षित होता है। गुणस्त्रांग महावीर ने कहा है— "प्रश्न अधिकों में आत्मा की ध्यान अर्न्त एवं ब्रह्मतुष्ण उपज्ज्वालित छियो है।" इसलिए उन्होंने कहा— "इस मुल्लृक्षित से सब आत्माएँ का समान हैं, स्वरूप की वृद्धि से सब एक हैं—

"एसे आत्मा" —स्वानार्त सूत्र, प्रथम स्वान

—स्पर्श-नय तथा मुन-स्वरूप की भाव में आत्मा, एक है।'

इसी दृष्टि से मन्द्र-प्रद्धा तेजीक खरस्यों ने यह उद्धरण किया—

"एक सदृश विद्या वहुच वदनि।"

— 'सत्ता' आत्मा एक ही है। शुद्धि, नीति, सामाजिक आदि गुण की अपेक्षा से संसार की कोई आत्मा एक-स्वरूप से मिल नहीं है। यह आत्मा का शुद्ध रूप देखने का शृंदेिकोण है।

यद्यपि प्रति सत्ता तुलिवात्सरों ने "रामचरित मानस" की ग्रंथी में संसारवाण में ही उद्द्वाहन है— "समस्ताकं किसकं करे? बहु, विविध, महसूल और विनिर्मित सामादों के अन्तराण देवताओं से भी किसी सुधा और किसी छोड़ो। और, यद बाहर से हूँकर दूर है, पश्चिम समकाली धर्मः
श्रद्धाळोमा की शुद्धता की श्रोत्र ऊर्ध्व गई, तो श्रेष्ठ श्रावणी में एक ही विराट शुद्धता उभें तुरत दिखाई पड़ी और तकली ही श्रावण का उत्तर उन्होंने स्वयं देखा दिया—

“विष्णु-राममय शब्द जग जाती। करुः प्राणाम जोरि जुआ-पानी।”

इस चीजें में एक विराट सत्य का उद्धार उन्होंने कर दिया है। उन्होंने सर्वत्र श्रावण और सभी श्रावणों में सीता-राम का दर्शन दिया। राम और सीता की पवित्र श्रावण से भिड़ उन्हें कोई भी नूतन श्रावण दिखाई नहीं पड़ी, वहीं भी उन्होंने रामवन या कुंभकरण का दर्शन नहीं दिया। उन्हें हर श्रावण, राम और सीता के उज्ज्वल रूप में जगमगाती परिचित हुई।

जों के द्वारा जब नमस्कार करने का प्रथा उड़ा, तो विचार चिह्न गया। किसी एक ही विचार सैकड़कर, परमात्मा या भगवान् पर जा वार बूढ़ नहीं बनी। उन्होंने कहा—

‘श्रावण’ श्रावण—ससी एक पद में सभी श्रुति, प्रभुइक्ष्य एवं विश्ववाक्य श्रावणों को नमस्कार हो गया। नहीं तो, श्रावण के श्रावण श्रावण नाम गिनाया या जिसी नमस्कार करने, किसी नूतन के नमस्कार करने, श्रावण न पड़े। श्रावण न पड़े लेने और विचार सैकड़कर। यह प्रकार प्रथमें विचाराद्वारे श्रावण उपस्थित ही जाते, जिसमें नमस्कार का भाव ही निरोधित हो जाता। इसी प्रकार इसके श्रावण—‘श्रावण’ श्रावण, विश्ववाक्य श्रावण और प्रभुइक्ष्य के सभी श्रावणों को, ‘श्रावणा याग्यायण’ में सभी श्रावणों को, ‘श्रावणा कल्पनायण’ में सभी समाध्यायणों को, और ‘श्रावणा बीजायण’ में सभी समस्यायणों को, उसमें उसमें निरंतर सुवार्द्ध का नमस्कार कर दिया गया। इसमें यह भंड नहीं विचार गया, कि जैन-श्रावण तथा विश्ववाक्य समस्यायणों के ही श्रावणों, उपाध्यायों और साधूओं का नमस्कार हो, लेकिन उस नमस्कार में सभी समस्यायणों, उपाध्यायों, प्रभुइक्ष्यों के उपाध्याय, जुआ, ब्रह्मचर्य और साधू सुमिलित हो गए। कुछ लोग, इसे जैन मन्त्रों, सिद्धों, श्रावणों, उपाध्यायों और साधूओं एक ही सिद्धित कर लेते हैं, लेकिन यह तो विचार हो कभी एवं सम्मान नहीं में ऐसी समस्यायण के कारण है। वास्तव में जैनत, जो श्रावण की व्याख्या है, जो जैन वादों, राज, पंथ, या समस्यायण में बदल नहीं है, जो धर्म किसी वादों, वेद, अछुत-मर्यादा श्रावण किया-साधनों में बदल हो जाता है। नहीं है, जो वेद की भूमिका में होता है, वेद में नहीं। वेद की मूल-मूलता में हम धर्म के ऊपर स्तर को अविश्वसनीय पाते, तो यह ठीक नहीं है।

श्रावणा: ज्ञान-स्वरूप है:
भारतीय-दर्शन में एक मान चारीक को छोड़ कर, श्रेष्ठ समस्त दर्शन आत्मा की सत्ता का स्वीकार करते हैं और श्रावण के अस्तित्व में विचार उत्पन्न करते हैं। अवधी आत्मा के श्रवण के प्रति श्रावण को पूर्वतन सबकी विश्राम-यमक है, जो इसमें जग भी शरीर नहीं है, क्यों वे सव मूलभूत ित्र सभी आत्मा की सत्ता का स्वीकार करते हैं। भारतीय-दर्शनों में आत्मा के श्रवण के प्रति श्रावण में सब साधारण यमक है, जो ज्ञान आत्मा का निज स्तर है या आत्मन गुण है। स्वाभाविक श्रावण का आत्मा का असंगठित गुण तो स्वीकार करते हैं, पर उनके वहाँ वह आत्मा का असंगठित गुण न हो कर, आत्मन गुण है। भौतिक-सृजन के अनुसार तो, जब तक आत्मा की संसारी अवस्था है, तब तक आत्मा आत्मा में रहता है, परंतु मूल अवस्था में आत्मा नष्ट हो जाता है। इसके अंतर्गत, कुछ दर्शनों की यह भी समस्या है कि संसारी आत्मा का ज्ञान आत्मा के, पर ईश्वर का ज्ञान निष्ठाने विज्ञान के ज्ञान स्वीकार करते हैं। वेदान्त-दर्शन में इस दृष्टि से ज्ञान को ही आत्मा कहा गया है। एक ज्ञान प्राप्त नृत्त उपर ही आत्मा कहा गया है—

“सुदेश्वर ! किमप्रकार भगवतो भक्तिः ?”

चेतना का विराट रूप
इसके उत्तर में गूढ़ कहता है—“वश्यत्वस्वरूप।”

लिखित पुढ़ा है—“किमालको भगवान्?”

गूढ़ समाधान करता है—“जातत्त्वको भगवान्।”

जैन-दर्शन के इतिहास में सम्पत्ति के सच्चाल से स्पष्ट हो जाता है—जैन-दर्शन भाषा को जात-स्वरूप मानता है। उदाहरण के बहुसूर, जात भाषा का नित्य दर्शन है।

जैन-दर्शन में भाषा के लक्षण और शब्दकर्त्ता के सभ्यता में विश्वसन हुआ, गोरी और व्यापक विचार किया गया है। भाषा जैन-दर्शन का मूल के होते हुए है। जैन-दर्शन में शब्दकर्त्ता नव पदार्थ, सुप्र, धर, धर्म और पद्धति स्त्रीत्व में व्यतिरेक प्राप्त है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है। जैन-दर्शन में ज्ञात गूढ़ स्वरूप है।
डिया गया है, तो दीवाक ने का काम यह है, कि वह जलता रहे और अपना प्रकाश सैलाना रहे। रात धर भी बदायूं कोई आकाश उत्साह क्षण में न उपाधि और वायु न करे, तब भी बीजक जलता है। करके में कोई उपाधि भी नहीं है, करके का काम है, करके को प्रकाशित करते जाना। कोई पूछ उससे कि वह अपने चर्च में आपना प्रकाश पकड़ रहो हो? जब तुम्हारे प्रकाश का कोई उपयोग नहीं हो रहा है, तो वह वही प्रकाश मैल रहा है। यहाँ तो कोई भी नहीं है, जो तुम्हारे प्रकाश का उपयोग कर सके। दीपक के पास भाषा नहीं है। ज्ञापन उसके पास भाषा होती है, तो वह कहता कि मैं इससे क्या मलबार? कोई मेरे उपयोग कर रहा है, डेढ़वारा नहीं कर रहा है, उसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। भाषा मेरा काम है, जबते ही जाना। प्रकाश पैदा करता जाना ही मेरा स्वभाव है। क्योंकि इस पदार्थ का अन्तर्गत लाना या बाहर निकालना मेरा काम नहीं है, परंतु जो पदार्थ नियन्त्रित नहीं है, उसे ही रूप में प्रकाशित कर देना ही मेरा अपना काम है। जो सिद्धान्त दीपक का है, वही सिद्धान्त प्रकाश का ही है। जान पदार्थ को प्रकाशित करता है, जिसने पदार्थ में किसी प्रकाश का परिवर्तन करना जान का अपना कार्य नहीं है। जान एक रूप निहार और उसका अपना काम क्या है? अपने जैसे को जानना। संसार में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब जान के जैसे हैं और जान उनका जाना है। जान अपना है, क्योंकि जैसे जानता है, परंतु सान जब तक जानता है, तब तक वह अन्तः देखता जानकार होता है, तब वह उसी प्रकार अन्तर्द्वंद्व बन जाता है।

ज्ञानार्थी आदमी में एक उदार भोध-पूजा है कि जो जानता है, वही जानता है और जो जानता है, वही जानता है।

'जे ज्ञाना से विद्विमाय, जे विद्विया से ज्ञाता।'

आत्मा ज्ञान-स्वरूप है। चेतना आत्मा का गुण है। जहाँ आत्मा का असीमवल नहीं, वहाँ ज्ञान का भी असीमवल नहीं। जहाँ लक्षण है, वहाँ लक्षण है। जहाँ लक्षण है, वहाँ लक्षण है। आत्मस्वूक्त जन और लक्षण कभी अलग-अलग नहीं रह सकते। जैसे सूर्य और प्रकाश कभी अलग-अलग नहीं किए जा सकते। जहाँ प्रतिबन्ध है, वहाँ प्रतिबन्ध है। जहाँ समाधि है, वही समाधि है।

संसार के पदार्थों का ठीक-ठीक विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि गुण और गुणी एक-दूसरे से कभी भी अलग-अलग नहीं हुए, और न कभी हो गए ही। दीपक के जैसे जैसे पदार्थ की लो का प्रकाश, कभी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते, उसी प्रकार अत्मा और आत्मा का जान, कभी एक-दूसरे को छोड़ देक नहीं रह सकते। दोनों में उभयगुणी व्याप्ति है।

आत्मा और आत्मा का सम्बन्ध एक-दूसरे से सम्बंध नहीं, उभय-पदार्थ नहीं है। जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ का आत्मा, और जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ का आत्मा भी बन जाता है। बौद्धिक दृष्टि से यह जान और आत्मा का उभय-पदार्थ संबंध है। जान कभी आत्मा से अलग नहीं हो सकता, तो जान आत्मा ही या मुख्यदेश। जैसे जान और आत्मा का विवेक होने का मतलब ही है--चेतना का जेड ही जाना। जैसे जो तो कभी हुआ है, तो कभी हो सकता। इसलिए यह सिद्ध है कि आत्मा आत्मा-स्वरूप है। जान आत्मा का आत्मस्वूक्त स्वरूप है।

चेतना का केन्द्र:

चेतना में जेड गया है--'विज्ञान हुआ' विज्ञान ही क्षुद्र है, परस्मात्मा है। और उसके आगे खड़ा है--तत्संख्यसिता--तू वह है। अर्थात् तू ही आत्मा स्वरूप परस्मात्मा है।

भारतीय-विज्ञान की यह विद्विन्यता रहती है कि वह तारीक, इन दो और मन तथा उसके निकटस्थों के घने जंगल के बीच भी आत्मा के स्वरूप की पहचान कर लेता है। शरीर, इन्द्रिय और 

चेतना का विषय-रूप

21
मन के चक्रबाट के बीच भी वह जह और चेतन का प्रेम स्पष्ट और लेता है। यथाप्रकार में जितनी भीतरिक शक्तियाँ चलती हैं, सो जह और चेतन भी मौजूद होते हैं। जिस साधारण दृष्टि से देखनेवाला हमें ही आत्मा का स्वरूप समझ लेता है। परंतु, यह सत्य नहीं है। वह स्वयं नित्यन्तिक आत्मा के आविष्कारिक धर्म हैं। मूल धर्म नहीं हैं।

जब तो हम आत्मा में पार्षद लाता हो जाता है, तब वह कोई अनुभव करता है, तो स्पष्टः करते हैं कि हम और उसका स्वरूप करता है। जब यदि कोई उससे प्रेरित हैं कि कैसे जग गया, तो वहीं उसके सिद्धांत हैं कि लोगों के खेलों के छुट्टियों से हाथ जल गया। किन्तु इस मूलतः वास्तविक दृष्टि से सत्य नहीं है। हाथ लोगों से मिलते हैं। किन्तु उसके कारण क्या है भ्रमितबाधा या यथार्थ, उस भ्रमितबाधा से है जल गया। जब लोगों के खेलों से भ्रमितबाधा निकल जाता है, तो उसी लोगों के गले के छुट्टियों से हाथ नहीं जलता। उत्तर उदाहरण का स्पष्ट अर्थ है कि हमें अभावानी भ्रम है। लोगों का गोला नहीं, यथार्थ लोगों का समस्त रूप के लोगों के खेलों के खेलों के खेलों के कवर्तिका। अलोक के एंव ज्ञान कर दिया है। यहीं वात वायु के धारा के द्वारा जाते पर है। वायु के धारा के द्वारा जाते पर है। जब तो हम भाव का धारा से होता है। इसी प्रकार अव-अव वायु की कवर्तिका का आत्मा ने निचार निचार है। वहूँ में आत्मा की पौराणिक-नैवासिक निम्नतियाँ हैं, यथार्थ निचार निम्नतिया नहीं हैं।

इन्द्रिय और मन बीमा के माध्यम से जो वात आता है, उसके समाध्य में स्विंति यह है कि आत्मा का स्वरूप यह है, इन्द्रिय आदि का नहीं। इन्द्रियों या मनोक्षेत्र में चिन्ता है, वह आत्मा के जान का इन्द्रिय आदि में उत्पन्न है। जरीर, इन्द्रिय आदि में जब तक यथार्थ-तत्त्व यथार्थ रहता है, तब तक उसकी भिड़ता शरीर के संस्कृतियों के माध्यम से परिप्रेक्षित होती रहती है। लोगों के गले के उदाहरण में यह स्पष्ट सँक्तिया था कि हम लोगों के आत्मा का आत्मार जल गया, किन्तु जलने को क्षितिज और उसके आत्मा ताप उसके निम्नतिया नहीं, बासक तदनंत क्षितिज-तत्त्व के गुण थे। यह स्पष्ट है जब तो हम लोगों के परस्पर एक-से एक वायु का संगम एवं परस्पर संगम हो जाते के कारण यथार्थ आत्मा में जलने की सिद्धि का यथार्थ लोगों के परस्पर संगम हो जाता, न कि उस क्षितिज-तत्त्व पर, जो कि हमके स्थल में स्थित है। वायु के लोगों एवं भ्रमितबाधा एवं समस्त रूप के हो जाते पर भी, वे उसकी भारी नहीं होते। आत्मा की है। अलोक ही उसकी संवर्तित है। किन्तु आलोक से उसकी पौर्वतत्व से सम्बन्धित न कर जरीर, इन्द्रिय और मन से सम्बन्धित कर राख जाता है। विज्ञान-भाषण करने की क्षितिज आत्मा की है, परंतु वह हमारी विज्ञान का आवार विच्छुद्ध दृष्टि से मन पर करते हैं। विज्ञान-भाषण का यह धारा स्वच्छता है कि जब तक विच्छुद्ध दृष्टि है और चेतन तक विच्छुद्ध होती है और विज्ञान के खिच्छुद्ध होती है। विज्ञान के खिच्छुद्ध जहाँ नहीं कर सकता। इसलिए यह स्पष्ट है कि अलोक ज्ञान का व्यवस्थ वावी-दर्शन स्वरूप करता है। भावना महादराने ने भी यह कहा था—“जो आत्मा है, वही विज्ञान है।” और जो विज्ञान है, वही आत्मा है। यही वात वेदांत व्यवस्था कहता है—“विज्ञान ही भ्रम है।” मन, जरीर और इन्द्रियों से आत्मा को इस प्रकार बांध किया गया है, जैसे धारा से मनोक्षेत्र का। आत्मा के साथ उसका सम्बन्ध है धारा, किन्तु वह दृष्टि और मनोक्षेत्र का सम्बन्ध है, जो सम्बन्ध पर विच्छुद्ध हो सकता है। आत्मा प्राविंद्रियां से भ्रमितबाधा भ्रम कर उसकी भूलमूलकम में भटक रही है। वह जाती है। भ्रमज्ञान ज्ञान कर रही है। धिश्व-सिद्धांत का, प्राविंद्रियां पद्धति का ज्ञान—इसे होने ही भ्रमज्ञान के अर्थों में पड़ी है। मिस्राजन के जगत में भटक रही है।
जे एंग जानइ, से स्वभाव जानइः 

हमराहु पूजाश्रं सर्वोह प्राप्त प्रवेश को जानने में लगाता बाहिर है। उपार्थकार लोग एक प्राप्त ने ग्रांति की पूजाश्रं से पूजाश्रं बनाए जा सकता है या एक प्राप्त के जानने पर सब मुख्य जानना जा सकता है।” जिया है तो गूढ़त में जिया यह भाजन—एक जीवन बनाकर, वह कीमत पर नहीं है। जिया ने जिया का समाधान न हो, तो वह फित वधान का एक धारणा कर लेती है। जिया ने जिया का समाधान किया—“अत्मसत जियारे सबसे विकासित भविष्य” —एक प्राप्त का जानने पर सब मुख्य जानना जा सकता है। जिया का अनुमान करने का एक-एक करके वह जानना प्राप्त किया जाए, तो अनुमान करने का अनुमान करने पर जीवन जानना नहीं हो सकता। किंतु उस एक प्राप्त तत्व को जानने पर सब मुख्य जानना हो सकता है।

‘आचारण’ मुख में अन्याय भविष्य मा वार्ती ने इस समस्या में अपहृत ही उद्वह बिषाल का प्रतिपादन किया है——

“जे एंग जानइ, से स्वभाव जानइः 
जे स्वभाव जानइः से एंग जानइः”

जो एक का जानना है, वह सबको जानना है और जो सबको जानना है, वह एक का जानना है। इस व्यक्ति का अभिवृत्त वह है जिससे एक वह पदार्थ का पूर्ण व्यापार कर लेता, उसके समस्त विकार को जानना लिया। क्योंकि जो किसी भी एक व्यक्ति की अनुमान पदार्थ को पूर्ण रूप में जानना लेता है, वह अनुमान तपाई होगा। अनुमान तपाई में सब मुख्य की जानने की शक्ति है। किसी भी एक पदार्थ के अनुमान तपाई उसकी अनुमान पदार्थ को जानने की शक्ति है—उसके सम्बन्ध में पदार्थ का पूर्ण रूप से जानना लिया। किसी भी पदार्थ का पूर्ण रूप से जानने का समाधान, केवल योजना के प्रतिपादन किसी अनुमान तपाई में नहीं है। केवल तपाई, तपाई का पूर्ण विकार है। वह अनुमान है, अनुमान है। अनुमान: उसके अनुमान की जानने की शक्ति है।

जीवन पदार्थ के अनुमान सन्ध्य की दृष्टि से पुजारी भी अनुमान है और जीवन भी अनुमान है। किंतु, एक व्यक्ति का भी व्यक्ति अनुमान गुण-मायकों की प्रशंसा से अनुमान समा गया है। जैसा कि पहले कहा जा सकता है, संसार का प्राप्त विकार पदार्थ अनुमान में अनुमान है। क्योंकि प्राप्त विकार में अनुमान गुण-मायकों होते हैं। और एक-एक गुण-माया की अनुमान पदार्थ होते हैं। अनुमान यह है, एक साथ अनुमान पदार्थों का एक संग्रह होता है? अनुमान भविष्य के, अनुमान भविष्य के और अनुमान व्यक्ति का पदार्थ का शक्ति होता है? और, क्या, एक-एक विकार में अनुमान अनुमान गुण-मायकों होते हैं? अनुमान पदार्थ व्यक्ति की, अनुमान पदार्थ भविष्य की है? एक पदार्थ का अनुमान पदार्थ की होती है?

इसकी समाधान के लिए एक उदाहरण लोगें— अपने सामने एक उद्योग है और उस व्यक्ति में इससे हाराम रहते हैं। उनमें से एक सच्चार लोगें। जिस पदार्थ ने अपने इस व्यक्ति का पदार्थ रूप में देख रहे हैं, तथा भूमिका में वह बसा ही हो और क्या भविष्य में भी वह बसा ही रहेगा? यदि आपकी दशन-सारा का शोध-सा भी परस्पर है, तो अपने यह कारण नहीं कि यह पदार्थ लोगें अपने व्यक्ति का पदार्थ रूप में शोध देख रहे हैं, भूमिका में भी ऐसा ही हो और अपने भविष्य का भी पंजीयन है। एक पदार्थ जब जगत लेता है, तब उसका रूप और व्यक्ति की होता है? उस समय उसके रूप और व्यक्ति का ताप कहा जाता है। फिर धीर-धीर वह हार ही होता है और फिर धीर-धीर बह एक तित दौड़ा पड़ जाता है। ताप बन्ध, हरतवर्ण और पीतवर्ण एक ही पदों के ये तीनवृत्ताश्रये बहुत

चैतन्य का विरोध रूप

23

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org
स्थान है। इसके बीच की सुख्ष्म व्रत्यांकों का यदि विचार किया जाए, तो तात्से से हृदि तक हुज़ारो-अचान व्रत्यांके ही सकती हैं और तात्से से पीठ तक करोड़ें व्रत्यांके ही सकती हैं। बसूं: यह हमारी परिसरणा भी बहुत ही स्थान है। जैन-दर्शन के अनुसार, तो उसमें प्रतिवज्ञ परिवर्तन भी होता है, जिसे हम अपनी चम्किलक्षों से देख नहीं सकते। कल्पना कीजिए, आपकी समस्त कोणत मनोन से शतपत के अंतर एक के अंतर एक भड़टि कर में हुए हों। आपके एक भड़टि और एक अंतर में उसके भड़टि दिया। तुष्की भड़टि एक साथ एक भड़टि में ही कमल के शतपतों की पार कर गई। पर, सुर्य इसके भड़टि जाए, तो भड़टि से न ततो को एक साथ नहीं, कमल: ही पार किया है। जिसमें यह कहाना सहस्त्र महत्व में नहीं भाती। दात-पति कल्पना-द्रव्य में काल-कम की निर्वास्ता है, कितु उसकी प्रतिवज्ञ हमें नहीं भाती पाती है। इसी प्रकार हृदि परिवर्तन के काल-करणों की धारा प्रस्तुत है। जो अलंकार सुख्ष्म होते हैं हमारी दृष्टि की पकड़ में नहीं भाती पाती है। बृह फिर पते में केवल वर्ण ही नहीं होता, वर्ण के प्रतिवज्ञ उसमें गोथ, रस और स्पर्श भाल्य भी होते हैं। जिसमें जब हम नेत्र के द्वारा पते को देखते हैं, तब उसके रूप का ही परिवर्तन होता है। यदि जब हम उसे गुज़रते हैं, तब हमें उसका संदर्भ का ही परिवर्तन होता है, रूप का नहीं। जब हम उसकी मनोन की खोज पर रहते हैं, तब हमें हमसे हमके रस का ही परिवर्तन होता है, वर्ण और गोथ का नहीं। जब हम उसे हाथों से चूक हैं, तब हमें हमके रस का ही नात होता है, वर्ण, गोथ और स्पर्श का नहीं। जब हम हाथ में धातु को सुनते हैं, तब धातु की ही हमारी भाव होता है, वर्ण, गोथ, रस और स्पर्श का नहीं। इसमें हम बहुत दाता कर सकते हैं कि हमें नेत्र से पते को देखकर उसके समस्तीता का भाव कर सकते हैं। जब तक हमारा श्रान्द सार्वभौम है, तब हमें किसी भी सेहत द्वारा समस्तीता रूप की नहीं जान सकते। सार्वभौम भाव खण्ड-खण्ड में ही बनता परिवर्तन करता है। बनता का समस्तीता भाव हमें एकआधार निर्वास्त केल्विक शास्त्र में ही प्रतिबिम्बित हो सकता है। किसी भी प्रतिचित्रता के अभाव में, हमें ही व्यक्ति, सम समस्तीतालयायी।

“तमस्याति परं प्रायोक्तः। सम समस्तीतालयायी।

परं तव अनंत अनंत, प्रतिमातित दत्वायमातित ज्ञात ॥”

—जिस प्रकार दर्शन के साथने आया इसका पदार्थ, उसने प्रतिबिंबित हो जाता है, उसी प्रकार तिस्त झाँसे में खापने-खाने भ्रान्त गुणपंक्ति के साथ अन्नक्षेत्र समस्तीता पदार्थ युग्म बलकर्ता है, वह भाव-ध्यान केल्विक है। केल्विक भाव-शासन रहित होता है। इसमें क्रियाकलाप का आवरण नहीं रह जाता। अतः पदार्थ का समस्तीता गुण ही उसमें प्रतिचित्रित होता है। वर्ण में जब किसी भी पदार्थ का प्रतिवर्तन पडता है, तब इसका प्रकार यह नहीं होता कि पदार्थ वर्ण बन गया प्रथम पदार्थ बन गया।

पदार्थ, पदार्थ के भाव पर है और वर्ण, वर्ण के भाव पर। दोनों की समस्तीता अन्तर-अन्तर संतत है। वर्ण में विश्व के प्रतिवर्तन का प्राप्त होने की आवश्यकता है और विश्व में प्रतिवर्तन होने की आवश्यकता है। अतः वर्ण में पदार्थ का प्रतिवर्तन ही पड़ता है। केल्विक-झाँसे में पदार्थ का बनने की आवश्यकता है, और पदार्थ में बनाने का ज्ञान होना जाता है, तब इसका प्रकार यह नहीं होता कि बनाने पदार्थ बन गया, प्रथम पदार्थ समस्त पदार्थ का बन गया। साथान, साथान की जगह है और पदार्थ, पदार्थ की जगह है। दोनों का एक समस्त एक भरकर निर्वास्त है। शासन का स्वाभाव है जानना और पदार्थ का स्वाभाव है, शासन के द्वारा शासन होता है। केल्विक एक, एक और निर्वास्त बनाना है। किसी भी संक्षेप से प्रत्यक्ष पदार्थ एक और समस्त जाते हैं।

प्रत्यक्ष पदार्थ के अन्तर-अन्तर पदार्थ भी एक साथ झाँसे होते हैं। किसी भी स्वर्ग के पदार्थों का बनाने की आवश्यकता है। प्रत्यक्ष ही अन्तर का जान सकता है।

२४
प्रात्मा में विकार विज्ञातिय है`

राग और देव प्राण का कारण निर्मल आत्मा में कर जाता है। आत्मा में जो कुछ भी मलिगित है, वह अनूठी नहीं है, वर्तमान श्रवण और श्रवण के ढंग से अभाई है। राग जो वस्तु पर के संयोग से आता है, वह कभी स्वाभाविक नहीं रहता। अभ्यास विधान ज्ञान में पर सत्य आता है, वह शरीर सोपन्यसा में आता है। अभ्यास वस्तु में जो मलिगित है, वह उसके अनूठी नहीं है। अर इस की कारण पर संयोग में जो आता है, क्या वह रंग उसका अर है? रंग उसका अर का अनूठा नहीं है। जैसे शरीर सोपन्यसा में रंग सोपन्यसा लगता है। अतः रंग में जो मलिगित है, जैसा रंग है, वह उसका अर नहीं है, वह पर संयोग ज्ञान है।

विज्ञानीय तत्व का समन्वय तथा विद्वान के परसंयोग-वृष्टि उसे स्वाभाविक नहीं करता। जो भी कुछ है, उसे न होकर मान लिया जाएँ, तो योग में जीव और मूर्खी की हृदयभाव ही नहीं है। पर संयोग-वृष्टि वाश अर बन तथा जीवात्मा का अर स्वभाव मान लिया जाएँ, तो करेंगे काम की सातारा से भी राग-देव हृदय नहीं किया जा सकते।

जैन-दास्तन के अनुसार प्रात्मा जानवरणवाद जैसा से भली है, जीव और वृक्क जैसा से भली है। कर्म के में, से हैं, और वृक्क के में, से हैं। यही यह प्रकार की बुद्धि का तथा यह काम और वृक्क के रूप में है, इस प्रकार की बुद्धि, विमायोगरूप है। यदि काम को होने पर, पदार्थ जैसे जीव जैसे जीव की अभ्यास की अभ्यास नहीं है। अतः वस्तु में जो मलिगित है, वह अनूठा नहीं है, वह पर संयोग ज्ञान है। अभ्यास के परसंयोग संचार में जीव जैसे जीव की अभ्यास नहीं है। जीवात्मा वह समस्त का है कि यह कर्म का का अर है और वृक्क का अर है। यथावत्-नय से यह वात बन सकता है, यथावत्-नय से वातावरण पुनः कर्म का का अर है और न कर्म का अर है। प्रात्मा का परसंयोग संचार में जीव जैसे जीव बन जाता है। अभ्यास के परसंयोग संचार में जीव जैसे जीव की अभ्यास नहीं है। जीवात्मा वात होता है। जिस के में उसमें का कर्म है और वृक्क है, तो कर्म का कर्म होता है। ज्ञान और वातावरण-नय से वातावरण का का अर है और न कर्म का अर है। प्रात्मा का अभ्यास अभ्यास नहीं है। कर्म जैसे जीव जैसे जीव का कर्म नहीं है। उसमें जो कुछ मलिगित है, वह विज्ञानीय तत्व का संयोग से ही ज्ञात है। विज्ञानीय तत्व के संयोग के विश्लेष हो जाने पर जीव स्वभाव निमाश और निमाश पर हो जाता है। साधन जीव मानता है और जीव जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा निर्मल है और वृक्क जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा का कर्म निर्म ज्ञात है। उसमें जो कुछ मलिगित है, वह विज्ञानीय तत्व का संयोग से ही ज्ञात है। विज्ञानीय तत्व के संयोग के विश्लेष हो जाने पर जीव स्वभाव निमाश और निमाश पर हो जाता है। साधन जीव मानता है और जीव जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा निर्मल है और जीव जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा का कर्म निर्म ज्ञात है। उसमें जो कुछ मलिगित है, वह विज्ञानीय तत्व का संयोग से ही ज्ञात है। विज्ञानीय तत्व के संयोग के विश्लेष हो जाने पर जीव स्वभाव निमाश और निमाश पर हो जाता है। साधन जीव मानता है और जीव जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा निर्मल है और जीव जैसे जीव जैसे जीव का कर्म होता है। जीवात्मा का कर्म निर्म ज्ञात है।
तो आत्मा अपने निरंजन, निविकार शुद्ध स्वरूप में आ जाएगी। तब, इन्द्रिय श्रौर शरीर के घेरे को तोड़कर, जो अपना शुद्ध लक्षण है—ज्ञानमय-स्वरूप है, उस में सदा-स्वरूप के लिए विराजमान हो जाएगी। तब वह इस संसार की दास नहीं, स्वामी होगी श्रौर होगी, ज्ञानमय प्रकाश-पुल्ज़।

"ब्रजत नामी य ब्रजत दंसी।"

★

स्वपनविवेकों हि दर्शनम्।

—स्व श्रौर पर का विवेक-बोध हि दर्शन है।

चिदचिदु भेदविज्ञान हि दर्शनम्।

—जड़ श्रौर चेतन का भेद-विज्ञान हि दर्शन है।

—उपाध्याय श्रमर्मस्ति